https://thehindudharma.com/

श्री गजेन्द्र मोक्ष स्तोत्रम्

श्रीमद्भागवत महापुराण (अष्टम स्कन्ध)

श्री शुक उवाच –

एवं व्यवसितो बुद्ध्या समाधाय मनो हृदि ।
जजाप परमं जाप्यं प्राग्जन्मन्यनुशिक्षितम ॥१॥

भावार्थ: श्री शुकदेव जी ने कहा – परीक्षित ! बुद्धि के द्वारा पिछले अध्याय में वर्णन की गई विधि से निश्चय करके तथा मन को हृदय में एकाग्र करके, वह गजेन्द्र अपने पूर्व जन्म में सीखे हुए सर्वश्रेष्ठ स्तोत्र के जप द्वारा भगवान की स्तुति करने लगा ॥१॥

गजेन्द्र उवाच –

ॐ नमो भगवते तस्मै यत एतच्चिदात्मकम्।
पुरुषायादिबीजाय परेशायाभिधीमहि।। २ ।।

भावार्थ: गजेन्द्रने कहा जो जगत्के मूल कारण हैं और सबके हृदय में पुरुष के रूपमें विराजमान हैं एवं समस्त जगत्के एकमात्र स्वामी हैं, जिनके कारण ये जड शरीर और मन आदि भी चेतन बन जाते हैं, उन सर्वसमर्थ परमेश्वर को मैं नमस्कार करता हूँ ।। 2 ।।

यस्मिन्निदं यतश्चेदं येनेदं य इदं स्वयम्।
योऽस्मात्परस्माच्च परस्तं प्रपद्ये स्वयम्भुवम्।। ३ ।।

भावार्थ: जिनके सहारे यह विश्व टिका है, जिनसे यह उत्पन्न हुआ है, जिन्होंने इसकी रचना की है और जो स्वयं ही इसके रूपमें प्रकट हो रहे हैं—फिर भी जो इस दृश्य जगत्से एवं उसकी कारणभूता प्रकृतिसे सर्वथा परे (विलक्षण) एवं श्रेष्ठ हैं—उन अपने-आप—बिना किसी कारण के—बने हुए भगवान्की मैं शरण लेता हूँ॥ ३ ॥

यः स्वात्मनीदं निजमाययार्पितंक्वचिद्विभातं क्व च तत्तिरोहितम्।
अविद्धदृक् साक्ष्यभयं तदीक्षते

भावार्थ: यह विश्वप्रपंच उन्हीं की माया से उनमें दिख रहा है। यह कभी प्रतीत होता है, तो कभी नहीं। परन्तु उनकी दृष्टि ज्यों-की-त्यों, एक-सी रहती हैं। वे इसके साक्षी हैं और उन दोनों को ही देखते रहते हैं। वे सबके मूल हैं और अपने मूल भी वही हैं। कोई दूसरा उनका कारण नहीं है। वे ही सबसे परे प्रभु मेरी रक्षा करें।। 4 ।।

भावार्थ: प्रलयके समय लोक, लोकपाल और इन सबके कारण सम्पूर्ण रूप से नष्ट हो जाते हैं। उस समय केवल अत्यन्त घना और गहरा अन्धकार-ही-अन्धकार रहता है। परन्तु अनन्त परमात्मा उससे सर्वथा परे विराजमान रहते हैं। वे ही प्रभु मेरी रक्षा करें ।। ५ ।।

न यस्य देवा ऋषयः पदं विदु-र्जन्तुः पुनः कोऽर्हति गन्तुमीरितुम ।
यथा नटस्याकृतिभिर्विचेष्टतोदुरत्ययानुक्रमणः स मावतु ।।६।।

भावार्थ: उनकी लीलाओंका रहस्य जानना बहुत ही कठिन है। वे नटकी भाँति अनेकों वेष धारण करते हैं। उनके वास्तविक स्वरूपको न तो देवता जानते हैं और न ऋषि ही; फिर दूसरा ऐसा कौन प्राणी है जो वहाँ तक जा सके और उसका वर्णन कर सके? वे प्रभु मेरी रक्षा करें ।। ६ ।।

दिदृक्षवो यस्य पदं सुमंगलमविमुक्त संगा मुनयः सुसाधवः ।
चरन्त्यलोकव्रतमव्रणं वनेभूतात्मभूता सुहृदः स मे गतिः ।।७।।

भावार्थ: जिनके परम मंगलमय स्वरूपका दर्शन करनेके लिये महात्मागण संसार की समस्त आसक्तियों का परित्याग कर देते हैं और वनमें जाकर अखण्ड भाव से अलौकिक व्रतोंका पालन करते हैं तथा अपने आत्माओं सबसे हृदयमें विराजमान देखकर स्वाभाविक ही सबकी भलाई करते हैं वे ही मुनियों के इष्ट भगवान् मेरे सहायक और मेरी गति हैं ।। ७ ।।

न विद्यते यस्य न जन्म कर्म वान नाम रूपे गुणदोष एव वा ।
तथापि लोकाप्ययसम्भवाय यःस्वमायया तान्यनुकालमृच्छति ।।८।।

भावार्थ: न उनके जन्म-कर्म हैं और न-रूप; फिर गुण और दोष कैसे हो सकते हैं? फिर भी विश्वकी सृष्टि और संहार करनेके लिये समय-समयपर वे उन नाम-रूप-गुण-दोष-जन्म-कर्म आदि को अपनी मायासे स्वीकार करते हैं ।। 8 ।।

तस्मै नमः परेशाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ।
अरूपायोरुरूपाय नम आश्चर्य कर्मणे ॥९॥

भावार्थ: उन्हीं अनन्त शक्तिमान् सर्वैश्वर्यमय परब्रह्म परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ। वे अरूप होनेपर भी बहुरूप हैं। मैं उन आश्चर्य कर्म करनेवाले के चरणोंमें नमस्कार करता हूँ ।। ९ ।।

नम आत्म प्रदीपाय साक्षिणे परमात्मने ।
नमो गिरां विदूराय मनसश्चेतसामपि ॥१०॥

भावार्थ: स्वयंप्रकाश, (जिसको देखने के लिए किसी और साधन की जरूरत न पड़े, जो आत्मप्रदीप है, जैसे दीपक को देखने के लिए किसी दूसरे प्रकाश की जरूरत नहीं है।) सबके साक्षी परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ। जो मन, वाणी और चित्तसे अत्यन्त दूर भी हैं उन परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ ।। 10 ।।

सत्त्वेन प्रतिलभ्याय नैष्कर्म्येण विपश्चिता ।
नमः कैवल्यनाथाय निर्वाणसुखसंविदे ॥११॥

भावार्थ: विवेकी पुरुष, जिनका अन्तःकरण शुद्ध हो चुका है, वे निष्कर्मताके द्वारा जिन्हें प्राप्त करते हैं, वैसे कैवल्यके नाथ, निर्वाण सुख और ज्ञानस्वरूप परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ ।। 11 ।।

नमः शान्ताय घोराय मूढाय गुण धर्मिणे ।
निर्विशेषाय साम्याय नमो ज्ञानघनाय च ॥१२॥

भावार्थ: जो सत्त्व, रज, तम इन तीन गुणोंका धर्म स्वीकार करके क्रमशः शान्त, घोर और मूढ़ अवस्था भी धारणा करते हैं, उन भेदरहित समभावसे स्थित एवं ज्ञानघन प्रभुको मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ ।। 12 ।।

क्षेत्रज्ञाय नमस्तुभ्यं सर्वाध्यक्षाय साक्षिणे ।
पुरुषायात्ममूलाय मूलप्रकृतये नमः ॥१३॥

भावार्थ: सभी क्षेत्रोंके ज्ञाता को नमस्कार है जो सबके अध्यक्ष (स्वामी) हैं और सभी के साक्षी हैं, जो अपने आपके भी मूल पुरुष हैं और मूल प्रकृति हैं उनको नमस्कार है ।। 13 ।।

सर्वेन्द्रियगुणद्रष्ट्रे सर्वप्रत्ययहेतवे ।
असताच्छाययोक्ताय सदाभासाय ते नमः ॥१४॥

भावार्थ: जो सभी इन्द्रियों और उसके गुणों के द्रष्टा हैं, मनमें चलने वाले सभी विचारों के कारण हैं, जो नहीं है और जो है उन दोनों के द्वारा आपका ही पता चलता है। ऐसे आपको नमस्कार है ।। 14 ।।

नमो नमस्तेऽखिल कारणाय निष्कारणायाद्भुत कारणाय।
सर्वागमान्मायमहार्णवाय नमोपवर्गाय परायणाय ॥१५॥

भावार्थ: सभी के कारण रूप और बिना किसी कारण के और अद्भुत कारण रूप वाले आपको नमस्कार है। जैसे सभी नदी-झरने महा समुद्र की ओर ही जाते हैं उसी तरह समस्त वेद-शास्त्र आपकी ओर ही जाते हैं। ऐसे मोक्ष स्वरूप आपको नमस्कार है ।। 15 ।।

गुणारणिच्छन्न चिदूष्मपाय तत्क्षोभविस्फूर्जित मानसाय ।
नैष्कर्म्यभावेन विवर्जितागम-स्वयंप्रकाशाय नमस्करोमि ॥१६॥

भावार्थ: जैसे काष्ठमें अग्नि गुप्त रहती है वैसे ही आप अपनेको गुणोंसे ढक कर रखते हैं। गुणोंमें क्षोभ होने पर मन द्वारा विविध प्रकारकी सृष्टि रचनाका संकल्प करते हैं। जो लोग नैष्कर्म्यता (कर्म त्याग) आदि द्वारा वेद शास्त्रोंसे से ऊपर उठ जाते हैं उनके आत्माके रूपमें आप स्वयं ही प्रकाशित हो जाते हैं। आपको मैं नमस्कार करता हूँ ।। 16 ।।

मादृक्प्रपन्नपशुपाशविमोक्षणाय मुक्ताय भूरिकरुणाय नमोऽलयाय ।
स्वांशेन सर्वतनुभृन्मनसि प्रतीत-प्रत्यग्दृशे भगवते बृहते नमस्ते ॥१७॥

भावार्थ: मेरे जैसे शरणागत पशुके बंधनको काटने वाले नित्य मुक्त प्रचुर करुणा वाले, आलस्य रहित आपको नमस्कार है। आप अपने ही अंशसे सभी देह धारियोंके मनमें प्रतीत होते हैं ऐसे विस्तृत (अनन्त) भगवान आपको नमस्कार है ।। 17 ।।

आत्मात्मजाप्तगृहवित्तजनेषु सक्तै-र्दुष्प्रापणाय गुणसंगविवर्जिताय ।
मुक्तात्मभिः स्वहृदये परिभावितायज्ञानात्मने भगवते नम ईश्वराय ॥१८॥

भावार्थ: जो लोग शरीर, पुत्र, गुरुजन, गृह, सम्पत्ति और स्वजनोंमें आसक्त हैं- उन्हें आपकी प्राप्ति अत्यन्त कठिन है। क्योंकि आप स्वयं गुणोंकी आसक्तिसे रहित हैं। जीवन्मुक्त पुरुष अपने हृदयमें आपका निरन्तर चिन्तन करते रहते हैं। उन ईश्वरको, ज्ञानस्वरूप भगवान्को मैं नमस्कार करता हूँ ।। 18 ।।

यं धर्मकामार्थविमुक्तिकामा भजन्त इष्टां गतिमाप्नुवन्ति ।
किं त्वाशिषो रात्यपि देहमव्ययंकरोतु मेऽदभ्रदयो विमोक्षणम् ॥१९॥

भावार्थ: धर्म, अर्थ काम और मोक्षकी कामनासे मनुष्य जिनका भजन करके अपनी अभीष्ट वस्तु प्राप्त कर लेते हैं। इतना ही नहीं, वे उन भक्तोंको सभी प्रकारका सुख देते हैं और अपने ही जैसे अविनाशी पार्षद शरीर भी देते हैं। वे ही परम दयालु प्रभु मेरा उद्धार करें ।। 19 ।।

एकान्तिनो यस्य न कंचनार्थवांछन्ति ये वै भगवत्प्रपन्नाः ।
अत्यद्भुतं तच्चरितं सुमंगलंगायन्त आनन्द समुद्रमग्नाः ॥२०॥

भावार्थ: जिनके भक्तजन एकान्त होकर, उनकी शरणमें जाकर कुछ भी इच्छा न रखते हुए भगवान की अद्भुत और मंगलमय चरित्र का गायन करते हुए आनन्दके समुद्रमें मग्न रहते हैं (उनकी मैं स्तुति करता हूँ) ।। 20 ।।

तमक्षरं ब्रह्म परं परेश-मव्यक्तमाध्यात्मिकयोगगम्यम ।
अतीन्द्रियं सूक्ष्ममिवातिदूर-मनन्तमाद्यं परिपूर्णमीडे ॥२१॥

भावार्थ: उन अविनाशी, सर्वव्यापक, सर्वश्रेष्ठ, ब्रह्मादिके भी नियामक, अभक्तोंके लिये अप्रकट होनेपर भी भक्तियोगद्वारा प्राप्त करनेयोग्य, अत्यन्त निकट होनेपर भी मायाके आवरणके कारण अत्यन्त दूर प्रतीत होनेवाले, इन्द्रियोंके द्वारा अगम्य तथा अत्यन्त दुर्विज्ञेय, अन्तरहित किंतु सबके आदिकारण एवं सब ओरसे परिपूर्ण उन भगवान्की मैं स्तुति करता हूँ॥ २१ ॥

यस्य ब्रह्मादयो देवा वेदा लोकाश्चराचराः ।
नामरूपविभेदेन फल्गव्या च कलया कृताः ॥२२॥

भावार्थ: ब्रह्मादि समस्त देवता, चारों वेद तथा सम्पूर्ण चराचर जीव नाम और आकृतिके भेदसे जिनके अत्यन्त क्षुद्र अंशके द्वारा रचे गये हैं॥ २२ ॥

यथार्चिषोऽग्नेः सवितुर्गभस्तयोनिर्यान्ति संयान्त्यसकृत् स्वरोचिषः ।
तथा यतोऽयं गुणसंप्रवाहोबुद्धिर्मनः खानि शरीरसर्गाः ॥२३॥

भावार्थ: जिस प्रकार प्रज्वलित अग्निसे लपटें तथा सूर्यसे किरणें बार-बार निकलती हैं और पुनः अपने कारणमें लीन हो जाती हैं, उसी प्रकार बुद्धि, मन, इन्द्रियाँ और नाना योनियोंके शरीर—यह गुणमय प्रपंच जिन स्वयंप्रकाश परमात्मासे प्रकट होता है और पुनः उन्हींमें लीन हो जाता है॥ २३ ॥

स वै न देवासुरमर्त्यतिर्यङ्न स्त्री न षण्ढो न पुमान् न जन्तुः ।
नायं गुणः कर्म न सन्न् चासन्निषेधशेषो जयतादशेषः ॥ २४ ॥

भावार्थ: वे भगवान् वास्तवमें न तो देवता हैं न असुर, न मनुष्य हैं न तिर्यक् (मनुष्यसे नीची—पशु, पक्षी आदि किसी) योनिके प्राणी हैं। न वे स्त्री हैं न पुरुष और न नपुंसक ही हैं। न वे ऐसे कोई जीव हैं, जिनका इन तीनों ही श्रेणियोंमें समावेश न हो सके। न वे गुण हैं न कर्म, न कार्य हैं न तो कारण ही। सबका निषेध हो जानेपर जो कुछ बच रहता है, वही उनका स्वरूप है और वे ही सब कुछ हैं। ऐसे भगवान् मेरे उद्धारके लिये आविर्भूत हों ॥ २४ ॥

जिजीविषे नाहमिहामुया कि-मन्तर्बहिश्चावृतयेभयोन्या ।
इच्छामि कालेन न यस्य विप्लव-स्तस्यात्मलोकावरणस्य मोक्षम ॥२५॥

भावार्थ: मैं इस ग्राहके चंगुलसे छूटकर जीवित रहना नहीं चाहता; क्योंकि भीतर और बाहर—सब ओरसे अज्ञानके द्वारा ढके हुए इस हाथीके शरीरसे मुझे क्या लेना है। मैं तो आत्माके प्रकाशको ढक देनेवाले उस अज्ञानकी निवृत्ति चाहता हूँ, जिसका कालक्रमसे अपने-आप नाश नहीं होता, अपितु भगवान्की दयासे अथवा ज्ञानके उदयसे होता है ॥ २५ ॥

सोऽहं विश्वसृजं विश्वमविश्वं विश्ववेदसम ।
विश्वात्मानमजं ब्रह्म प्रणतोऽस्मि परं पदम् ॥२६॥

भावार्थ: इस प्रकार मोक्षका अभिलाषी मैं विश्वके रचयिता, स्वयं विश्वके रूपमें प्रकट तथा विश्वसे सर्वथा परे, विश्वको खिलौना बनाकर खेलनेवाले, विश्वमें आत्मारूपसे व्याप्त, अजन्मा, सर्वव्यापक एवं प्राप्तव्य वस्तुओंमें सर्वश्रेष्ठ श्रीभगवान्को केवल प्रणाम ही करता हूँ—उनकी शरणमें हूँ ॥ २६ ॥

योगरन्धित कर्माणो हृदि योगविभाविते ।
योगिनो यं प्रपश्यन्ति योगेशं तं नतोऽस्म्यहम् ॥२७॥

भावार्थ: जिन्होंने भगवद्भक्तिरूप योगके द्वारा कर्मोंको जला डाला है, वे योगी लोग उसी योगके द्वारा शुद्ध किये हुए अपने हृदयमें जिन्हें प्रकट हुआ देखते हैं, उन योगेश्वरभगवान्को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २७ ॥

नमो नमस्तुभ्यमसह्यवेग-शक्तित्रयायाखिलधीगुणाय ।
प्रपन्नपालाय दुरन्तशक्तयेकदिन्द्रियाणामनवाप्यवर्त्मने ॥२८॥

भावार्थ: जिनकी त्रिगुणात्मक (सत्त्व-रज-तमरूप) शक्तियोंका रागरूप वेग असह्य है, जो सम्पूर्ण इन्द्रियोंके विषयरूपमें प्रतीत हो रहे हैं, तथापि जिनकी इन्द्रियाँ विषयोंमें ही रची-पची रहती हैं—ऐसे लोगोंको जिनका मार्ग भी मिलना असम्भव है, उन शरणागतरक्षक एवं अपार शक्तिशाली आपको बार-बार नमस्कार है ॥ २८ ॥

नायं वेद स्वमात्मानं यच्छक्त्याहंधिया हतम् ।
तं दुरत्ययमाहात्म्यं भगवन्तमितोऽस्म्यहम् ॥२९॥

भावार्थ: जिनकी अविद्या नामक शक्तिके कार्यरूप अहंकारसे ढके हुए अपने स्वरूपको यह जीव जान नहीं पाता, उन अपार महिमावाले भगवान्‌की मैं शरण आया हूँ ॥ २९ ॥

श्री शुकदेव उवाच –

एवं गजेन्द्रमुपवर्णितनिर्विशेषंब्रह्मादयो विविधलिंगभिदाभिमानाः ।
नैते यदोपससृपुर्निखिलात्मकत्वात् तत्राखिलामरमयो हरिराविरासीत् ॥३०॥

भावार्थ: श्रीशुकदेवजी कहते हैं—इस तरह गजेन्द्र द्वारा वर्णित निर्विशेष ईश्वर की स्तुति से ब्रह्मा आदि देवता उसकी रक्षा करनेके लिये नहीं आये। क्योंकि वे सब भिन्न-भिन्न नाम और रूपको अपना स्वरूप मानते हैं। उस समय सभीके आत्मा और सभी देवताओं के स्वरूप होनेके कारण स्वयं भगवान् श्रीहरि प्रकट हो गये ॥ ३० ॥

तं तद्वदार्त्तमुपलभ्य जगन्निवासःस्तोत्रं निशम्य दिविजैः सह संस्तुवद्भिः।
छन्दोमयेन गरुडेन समुह्यमान –श्चक्रायुधोऽभ्यगमदाशु यतो गजेन्द्रः ॥३१॥

भावार्थ: उस गजेन्द्रको अत्यंत पीड़ित देखकर, उसकी स्तुति को सुनकर सम्पूर्ण जगत्में रहनेवाले विश्वके एकमात्र आधार भगवान् वेदमय गरुड़ पर बैठे हुए, चक्र आदि आयुध सहित, बड़ी शीघ्रता से वहाँ प्रगट हो गए। उनके साथ स्तुति करते हुए देवतागण भी आ गए ॥ ३१ ॥

सोऽन्तस्सरस्युरुबलेन गृहीत आर्त्तोदृष्ट्वा गरुत्मति हरिम् ख उपात्तचक्रम ।
उत्क्षिप्य साम्बुजकरं गिरमाह कृच्छा –नारायणाखिलगुरो भगवन्नमस्ते ॥३२॥

भावार्थ: सरोवरके भीतर अत्यंत बलवान् ग्राहसे पकड़ा हुआ और व्याकुल हाथी ने देखा कि आकाशमें गरुड़ पर सवार भगवान् चक्रको उठाये हुए आ रहे हैं। उस हाथी ने सरोवरसे एक सुन्दर कमलके पुष्पको सूंडमें ऊपर उठाया और अत्यंत कष्टसे बोला-नारायण! अखिलगुरो! भगवन्! आपको नमस्कार है।। 32 ।

तं वीक्ष्य पीडितमजः सहसावतीर्यसग्राहमाशु सरसः कृपयोज्जहार ।
ग्राहाद् विपाटितमुखादरिणा गजेन्द्रंसम्पश्यतां हरिरमूमुच दुस्त्रियाणाम् ॥३३॥

भावार्थ: उसे पीड़ित देखकर अजन्मा श्रीहरि एकाएक गरुड़को छोड़कर नीचे झीलपर उतर आये। वे दयासे प्रेरित हो ग्राहसहित उस गजराजको तत्काल झीलसे बाहर निकाल आये और देवताओंके देखते-देखते चक्रसे उस ग्राहका मुँह चीरकर उसके चंगुलसे हाथीको उबार लिया ॥ ३३ ॥

और स्तोत्र के पाठ के लिए वेबसाइट विजिट करें:

https://thehindudharma.com/

THE HINDUDHARMA